पैरवी संवाद

पब्लिक एडवोकेसी इनीशिएटिव्स फ़ॉर राइट्स एण्ड वैल्यूज़ इन इण्डिया

सितम्बर 2018

इस अंक में...

2 **जो बच्चे हमारे नहीं हैं**
- चिन्मय मिश्र

5 **भारत के बाल गृह: लक्ष्य से परे**
- रिद्धि त्यागी

8 **किशोर न्याय एवं संरक्षण: क्रियान्वयन और खामियां**
- अंजलि त्रिपाठी

11 **गरिमापूर्ण जीवन पर भारी मैला**
- जसमीत कौर

14 **पैरवी गतिविधियां**

संपादक मंडल

प्रो. संजय भट्ट
अजय के. झा
रजनीश साहिल

संपादकीय

प्रिय साथियो,

बच्चों के अधिकारों और सुरक्षा की लड़ाई एक लंबे अरसे से लड़ी जा रही है और सालों से एक बात और भी कही जा रही है, यह कि 'बच्चे कल का भविष्य हैं।' जितनी यह दोनों बातें सच हैं, उतना ही सच यह भी है कि बच्चों के प्रति एक संवेदनशील समाज की कल्पना और जमीनी हकीकत में अभी भी बड़ा फासला है। बच्चों से जुड़ी समस्याएं आज भी हमारी प्राथमिकता में शामिल नहीं हैं। अधिकांश बच्चे और उनकी समस्याएं अनदेखी रह जाती हैं, यदि वे बच्चे हमारे नहीं हैं तब तो और भी। हाल ही में चर्चा में रही मुजफ्फरपुर की घटना इसका उदाहरण है। और यह अकेला उदाहरण नहीं है। यदि आप अलग-अलग राज्यों के अखबार उठाकर देखेंगे तो पाएंगे कि ऐसी घटनाएं आये दिन हो रही हैं और दोषी वे लोग हैं जिन पर इन बच्चों की सुरक्षा/देखभाल की जिम्मेदारी है।

मुजफ्फरपुर की और ऐसी ही अन्य घटनाओं में एक बात समान है कि बच्चों का एक लंबे समय तक शोषण होता रहा है, उसके बाद घटना का पता चला है। वह भी तब जब या तो बच्चों के परिजनों को पता चला या फिर किसी अन्य संस्था को। सवाल यह उठता है कि यह सब किसी अनदेखे द्वीप पर नहीं, हमारे आस-पास ही घट रहा है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देता? क्या हम अपने पड़ोस से बिलकुल ही बेखबर रहने लगे हैं? या फिर हम इतने संवेदनहीन हो गए हैं कि कोई चीख हमें उद्वेलित नहीं करती? दूसरी ओर हम यह भी देख रहे हैं कि बच्चों के प्रति अपराधों की उग्रता बढ़ती जा रही है। ऐसे में हमें अपने को सभ्य समाज या जिम्मेदार नागरिक कहलाने के पहले अपनी जिम्मेदारी पर पुनर्विचार करने की जरूरत है।

पुनर्विचार और सुधार की जरूरत बच्चों से जुड़े नियम-कानूनों और उनके क्रियान्वयन के मामले में भी है। बाल गृहों की स्थितियों पर अब तक आई कई रिपोर्टों में जो बात समान रूप से उल्लिखित है वह यह कि वहां जो सुविधाएं होनी चाहिए उनका अभाव पाया गया। कई जगह तो मूलभूत सुविधाएं तक उपलब्ध नहीं थीं। किसी अपराध के बाद सुधार की उम्मीद के साथ जिस सुधारगृह में बच्चों को भेजा जाता है उसे आम बोलचाल में लोग 'बच्चा जेल' कहते हैं और खबरें बताती हैं कि सुधारगृहों के हालात जेल जैसे ही हैं। ऐसे में जब तक इन बाल सुधार/संरक्षण गृहों में सुधार नहीं होता, बच्चों में सुधार की उम्मीद करना कितना मुनासिब है! सिर्फ मजबूत कानून और नियम बना देना या उन्हें और सख्त कर देना ही काफी नहीं, जरूरत है कि बच्चों को, फिर चाहे वे अपराध को अंजाम देने वाले हों या उसके शिकार, या किसी अन्य वजह से बाल गृहों में पहुंचे बच्चे, उनके लिए बनाए गए कानून का लाभ मिले, संरक्षण मिले।

पैरवी संवाद के इस अंक को हमने बच्चों के सरंक्षण, उनके लिए बने कानूनों के विषय पर केन्द्रित करने का प्रयास किया है। आशा है अपनी प्रतिक्रिया और सुझावों से आप हमें अवगत कराएंगे।

– संपादक मंडल

जो बच्चे हमारे नहीं हैं

✍ *चिन्मय मिश्र*

चित्र स्रोत: www.thewire.in

''एक अधेड़ उम्र औरत ने अपनी तीनों बेटियों सहित
कीटनाशक खा लिया''
नहीं तो क्या अमर फल खाती
कीड़े – मकौड़े से बदतर जिंदगी
और विस्थापित करने नाचने वाले
भेडियों के बीच ....

– चन्द्रकांत देवताले

जब भी ऐसी कोई खबर पढ़ने में आती है कि, माँ ने बच्चों के साथ आत्महत्या कर ली तो अंदर गुस्सा पनपता था कि अपने को जो करना था करती, बच्चों को क्यों मारा? हम सबको स्वयं पर, अपने आस-पड़ोस पर, समुदाय पर, सरकार पर बड़ा भरोसा रहता है कि कहीं न कही, कुछ न कुछ तो हो ही जाता? आत्महत्या और हत्या दोनों ही, कानूनी और नैतिक तौर पर अक्षम्य हैं, परंतु मुजफ्फरपुर में बालिका एवं बालक संरक्षण गृहों में जिस तरह का व्यभिचार, अत्याचार, पापाचार, बलात्कार का साम्राज्य सामने आया तो एक क्षण को लगा कि जैसे उस माँ ने ठीक ही किया।

बच्चियों को यातना की निरंतरता से तो बचा ही लिया। उन तीनों लड़कियों को मुजफ्फरपुर संरक्षण गृह की 50 से ज्यादा लड़कियों की तरह स्वयं को यातना से बचाने के लिए स्वयं को रोज काँच घोंपकर घायल तो नहीं करना पड़ा। जो कुछ होना था एक बार में ही हो गया। शायद यह हमारी निराशा का चरम है, परंतु यही आज का सच भी है। भारतीय शासन व्यवस्था एक ऐसे नासूर का पोषण कर रही है जिसे कभी भरने ही नहीं दिया जाएगा। भारत के मध्यमवर्गीय या आयकरदाताओं को अपने इस घमंड से उबरना चाहिए कि यह देश केवल उनकी ही कर अदायगी के भरोसे चल रहा है।

आज भीख मांगने वाला भी सरकारी खजाने में अप्रत्यक्ष करों के माध्यम से योगदान करता है। और गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) को सरकारी सहायता में उसका भी योगदान है। बच्चों के साथ यहाँ जो हुआ है और हो रहा है, पशुता उसके लिए काफी ''कोमल'' अभिव्यक्ति है। गौर करिए कि यह अत्याचार यहीं तक सीमित नहीं है।

ऐसा कैसे संभव है कि भारत के प्रत्येक शहर में ऐसे बाल संरक्षण गृह हैं और उनकी निगरानी की कोई व्यवस्थित व्यवस्था ही नहीं है! क्या यह अंग्रेजी कहावत ''आउट आफ साइट आउट आफ माइंड यानी जो हमारी नजरों के सामने नहीं है वह हमारे ध्यान में भी नहीं है'' जैसा मामला है!

उधर तेलंगाना से खबर आई कि कई छोटी बच्चियों को एक से तीन लाख रुपये में खरीदा। नकली माँ बन उनका पाठशाला में प्रवेश भी करा दिया, जिससे कि कोई शक न हो। डॉक्टरों ने 20 से 25000 रु. तक लिए और दस-बारह बरस की बच्चियों को हारमोन के टीके लगाकर उन्हें समय से पहले जवान कर, देह बाजार के लिए तैयार कर दिया। जैसे कि गोया लौकी और लड़की में कोई फर्क ही नहीं है। आपको याद होगा कि कुछ समय पहले बाजार में खूब बड़ी-बड़ी लौकियां आने लगी थीं, जिन्हें इंजेक्शन लगाकर रातों-रात बड़ा कर दिया जाता है।

कुछ बरस पहले मध्य प्रदेश के मंदसौर/नीमच जिलों में देह व्यापार में लिप्त बांछड़ा समुदाय की लड़कियों एवं अपहरण की गई लड़कियों पर भी हारमोन्स का प्रयोग किया गया था। इसके परिणामस्वरूप 22-24 वर्ष की उम्र पर उनके सारे शरीर पर (चेहरे सहित) बाल उग गए थे और वे लगातार बीमार रहने लगी थीं। यहां भी डॉक्टर इस कार्य में शामिल थे। और चिकित्सा विज्ञान या मेडिकल की पढ़ाई पर भी हमारा आपका ही धन लगता है। तो सवाल उठता है कि आखिर ऐसा क्या हो गया है कि हम समाज के कुछ बच्चों के प्रति इतने अधिक क्रूर और बेहद अमानवीय हो गए हैं।

गौरतलब है, ये कौन-से बच्चे हैं जो हमारे नहीं हैं? और ये हमारे क्यों नहीं हैं? बच्चों पर केंद्रित तमाम अध्ययन उनकी शिक्षा, उनके विकास, उनके स्वास्थ्य आदि को लेकर बेहद चिंतित नजर आते हैं। उन्हें सदाशय और देशभक्त बनाने पर भी खूब शोर मचाते हैं। पांच सितारा विद्यालयों के एयरकंडीशंड डाइनिंग हॉल से लेकर गटर किनारे बनी आंगवाड़ियों और विद्यालयों के मध्यान्ह भोजन की चिन्ता भी हमें लगी रहती है, भले ही वह कितनी ही दिखावटी क्यों न हो! पर ये बच्चे जो संरक्षण गृह या अनाथालय में रह रहे हैं उनके बारे में कोई बातचीत नहीं हो रही। वे समाज की नजर ही नहीं उनकी सोच से ही नदारद हैं।

ऐसा कैसे संभव है कि भारत के प्रत्येक शहर में ऐसे बाल संरक्षण गृह हैं और उनकी निगरानी की कोई व्यवस्थित व्यवस्था ही नहीं है! क्या यह अंग्रेजी कहावत ''आउट आफ साइट आउट आफ माइंड यानी जो हमारी नजरों के सामने नहीं है वह हमारे ध्यान में भी नहीं है'' जैसा मामला है! क्या यही माजरा है? अगर यह भारतीय संदर्भ में सटीक बैठता तो सड़कों, रेल्वे प्लेटफार्मों, बस स्टेंडों, मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, गिरजों के सामने हाथ फैलाते बच्चे हमें नजर क्यों नहीं आते? परंतु मुजफ्फरपुर जैसी घटनाएं इसलिए अधिक गंभीर होने के साथ दुःखद हैं, क्योंकि ऐसे निराश्रित बच्चों का ध्यान रखने के लिए, भारतीय प्रशासनिक/राजनीतिक तंत्र ने एक सांस्थानिक व्यवस्था या प्रणाली को अपनाया और उसे पोषित करने के लिए आर्थिक मदद भी उपलब्ध करवाई है।

हम एक संविधान के अंतर्गत, तमाम कानूनों की सहायता से अपने राष्ट्र का संचालन करते हैं। इसकी भूमिका ''हम, भारत के लोग'' को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय और प्रतिष्ठा और अवसर की समानता के साथ ही साथ व्यक्ति की गरिमा की बात समझाती है। तो इन बच्चों को क्या हम अपने से अलग मानें? संविधान के मौलिक अधिकारों वाला अनुच्छेद-14, धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करता है। वहीं अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण करता है। अनुच्छेद 21-अ छः से चौदह वर्ष तक के बच्चों को शिक्षा अधिकार प्रदान करता है। दूसरी ओर राज्य के नीति-निदेशक तत्व में अनुच्छेद-39 (ड) के अनुसार ''पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।'' अनुच्छेद 39 (च) और भी स्पष्टता के साथ बता रहा है, ''बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।''

संविधान के इस विस्तृत उद्धहरण के पीछे मन्तव्य यही है कि हम समझ पाएं कि सरकारी पैसे के दुरुपयोग को सिर्फ भ्रष्टाचार के खाते में डालने से काम नहीं चलेगा। सरकारी धन से चल रहे ऐसे संरक्षण गृहों से सिद्ध हो रहा है कि किस तरह की अनैतिकता व अत्याचार को बढ़ाने में सरकारी मदद काम में लाई जा रही है। बच्चों पर गहन अध्ययन कर रहे सचिन कुमार जैन का कहना है कि तमाम (सभी नहीं) संरक्षण गृहों एवं जेलखानों में कोई

अंतर नहीं है। कहीं कोई दरवाजा या रोशनदान नहीं हैं, जिनसे कोई आवाज बाहर आ सके। दोनों ही स्थानों पर जैसे नागरिक अधिकारों पर स्थगन लग जाता है। मुजफ्फरपुर में स्थितियां थोड़ी भिन्न थीं। वैसे जिस भवन में इन लड़कियों को रखा गया था, उसमें भी कोई खिड़की नहीं थी। आस-पडोसियों का कहना है कि उन्हें बच्चियों की चीखें निरन्तर सुनाई देती थीं। फिर भी किसी ने कोई कदम नहीं उठाया। सभी के घरों में बच्चे तो होंगे? लेकिन ये तो वे बच्चे थे, जो हमारे नहीं हैं, इसलिए हमारा कोई दायित्व बनता ही नहीं। साथ ही साथ एक बड़ी समस्या यह भी है कि शायद हम इन बच्चों की निगाह से देख ही नहीं पा रहे हैं, उनकी शारीरिक व मानसिक स्थिति भी नहीं समझ रहे हैं। इसीलिए हम संभवतः इस समस्या का कोई हल भी सुझा ही नहीं पा रहे हैं। यह भी तथ्य है कि भारत के तकरीबन 80 प्रतिशत संरक्षण गृह निजी हाथों में हैं और वे सरकारी/सार्वजनिक निगरानी तंत्र की पहुँच से बाहर हैं। हमें टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस (टिस) मुंबई के शोधकर्मियों का शुक्रगुजार होना चाहिए कि वे इन विभीषिकाओं को हमारे सामने लाने का दुस्साहस कर पाए। अखबारों में मुजफ्फरपुर संरक्षण गृह के सर्वेसर्वा का पुलिस अभिरक्षा में फोटो छपा है। उसके चेहरे की निर्मम बेशर्मी अभी भी अपनी मुस्कराहट के साथ हमें चिढ़ा रही है। यह प्रथा बन गई है कि आजकल जैसे ही कोई बर्बर अपराध होता है, उसको समाप्त करने के लिए मृत्युदंड का प्रावधान कर दिया जाता है। क्या ब्रजेश राठौर और उसके इस आश्रम में आने वाला वर्ग, जिसमें एक मंत्रीपति की बात भी सामने आ रही है, नहीं जानते थे कि पाक्सो कानून में मौत की सजा का प्रावधान कर दिया गया है।

बलात्कार और हत्या के दुर्लभ मामलों में मृत्युदंड की सजा अब दी जा सकती है, परंतु सब व्यर्थ! क्यों? यही क्यों आज का सबसे ज्वलंत मुद्दा है। समाज में कानून व न्याय के प्रति इतनी घोर अवहेलना की हिम्मत कहां से आ रही है!

पिछले दिनों दिवंगत हुए लेखक/पत्रकार राजकिशोर, अपनी संपादित पुस्तक श्रंखला 'आज के प्रश्न' की एक पुस्तक, ''बच्चे और हम'' की शुरुआत में लिखते हैं, ''मेरे एक मित्र का कहना है कि स्त्री दुनिया का आखिरी उपनिवेश है। और बच्चे? उनके बारे में सोचने की जरूरत किसे है?'' पूरे 20 साल हो गए इस पुस्तक को छपे। हम बच्चों को लेकर जितनी भी बातें कर रहे हैं, वह यकीनन महत्वपूर्ण हैं, लेकिन यह उन बच्चों तक सीमित होती गई हैं जो हमारी आँखों के सामने हैं। आज सिर्फ लड़कियां ही नहीं लड़के भी बड़ी संख्या में बलात्कार का शिकार हो रहे हैं और टिस की रिपोर्ट में इसका भी विस्तार से वर्णन है।

बच्चों को लेकर हमें अपनी सोच को लैंगिक तटस्थ (जेंडर न्यूट्रल) बनाना होगा तभी हम शायद किसी हल तक पहुंच पाएं। एक अव्यावहारिक-सा नजर आने वाला परंतु परीक्षण किया जाने वाला सुझाव यह है कि ऐसे बाल संरक्षण गृहों में रहने वाले प्रत्येक बच्चे के लिए एक स्थानीय पालक को जिम्मेदारी दी जाए। बाल संरक्षण समितियों पर भी इन्हीं पालकों के समूह द्वारा निगरानी रखी जाए। देवताले जी कविता के अन्त में कहते हैं, ''खट! खट! खट! दरख्त कट रहा है ब्रहमाण्ड में / कांच के चूर-चूर टुकड़ों की तरह / बिखर रहा है माँ का कलेजा / अफसोस कहीं भी दर्ज नहीं हो रहीं ये हत्याएं / धन डालर की पूजा, विदेशी आतिशबाजी के / करोड़ों-करोड़ों में धुत्त है मुट्ठीभर लोगों वाला देश।

(लेखक सामाजिक कार्यकर्ता हैं)

समान शिक्षा के बगैर बाल अधिकार संरक्षण की बात बेमानी

18 जून 2018, रायपुर।
कृषि एवं सिंचाई मंत्री बृजमोहन अग्रवाल ने राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा 'बालमित्र अवधारणा' विषय पर राष्ट्रीय कार्यशाला में रविवार को कहा कि बच्चों को समान शिक्षा के बगैर बाल अधिकार संरक्षण की बात बेमानी है। शिक्षा के अधिकार कानून का फायदा कितने लोगों को मिल रहा है या कितने लोग ले पा रहे हैं यह भी समझने का विषय है।

बहुत सारी बातें धरातल पर सही नहीं उतर रही। जैसा कि हम देखते हैं कि सरकारी की ढेर सारी योजनाएं हैं परंतु उन योजनाओं का फायदा समझदार लोग आसानी से ले लेते हैं, वहीं इसके लिए साधारण लोगों को संघर्ष ज्यादा करना पड़ता है। ऐसे लोगों तक हम योजनाओं का लाभ आसानी से पहुंचा सकें, इसके लिए हमें अतिरिक्त प्रयास करना चाहिए।

अग्रवाल ने कहा कि शिक्षा का स्तर सुधर जाए या समान शिक्षा का भाव सिस्टम में आ जाए तो निश्चित रूप से बच्चों के अधिकारों की लड़ाई हम जीत सकते हैं। बच्चों को अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना ही चुनौती है। हम यह कार्य पूरा कर लें तो उनका उज्ज्वल भविष्य बनेगा।

(sourcd: https://www.bhaskar.com/chhatisgarh/raipur/news/latest-raipur-news-052003-1988450.html)

बाल गृह या यातनागृह

✍ *रिद्धि त्यागी, इन्टर्न*

चित्र क्रेडिट: www.erewise.com

बिहार के मुजफ्फरपुर नगर में एक दिल दहला देने वाली घटना सामने आई। बालिकाओं के आश्रय गृह में चलते एक सेक्स रैकेट की खबर सामने आते ही, पुलिस ने वहां से 46 बालिकाओं को बचाया। महिला और बाल विकास मंत्रालय ने एक शिकायत पर त्वरित कार्यवाही करते हुए बिहार राज्य बाल संरक्षण आयोग (बीएससीपीसीआर) द्वारा आश्रय गृह का निरीक्षण करवाया। इस प्रकरण में आश्रय गृह के प्रबंधक को गिरफ्तार भी किया गया।

विभाग ने आश्रय गृह की बालिकाओं को राज्य में अन्य आश्रय गृहों में स्थानांतरित कर दिया है और यौन अपराध (पोस्को) अधिनियम से बच्चों के संरक्षण के तहत गैर सरकारी संगठन के खिलाफ मामला दर्ज कराया है। विभाग ने संबंधित एनजीओ द्वारा मुजफ्फरपुर में संचालित अन्य केंद्रों और वृद्धाश्रमों को आवंटित कर दिया है और वहां तैनात सहायक निदेशक को निलंबित भी कर दिया है। इसके अलावा संस्था का पंजीकरण रद्द करने की सिफारिश भी की है।

ऐसी घटनाएं सिर्फ मुजफ्फरपुर तक ही सीमित नहीं हैं। मोतिहारी के एक बाल ग्रह पर भी यौन शोषण के कई आरोप हैं। इसी प्रकार, कैमूर में एनजीओ संचालित अस्थायी आश्रय गृह पर आरोप है कि वहां का एक सुरक्षाकर्मी यौन शोषण गतिविधियों में शामिल था। पूरे देश के कई एनजीओ और स्वैच्छिक संगठनों पर ऐसे मामले दर्ज हैं।

सोचिए, जहां बच्चे एक बेहतर भविष्य की आस में जाते हैं वहीं उनका उत्पीड़न हो रहा हो, तो क्या हमारा भविष्य सही हाथो में है?

आए दिन बाल गृहों की भयानक सचाइयां सामने आती रहती हैं। जब कभी ऐसी खबर आती है तो हम विचलित हो उठते हैं, ऐसा कृत्य करने वालों की लानत-मलामत करते हैं, पर असल में हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। अपने आसपास संचालित इन आश्रय गृहों के बारे में कितने लोग जानकारी रखते हैं और जिम्मेदार नागरिक की तरह इन पर निगरानी रखते हैं? अक्सर तो इस तरह की घटनाओं पर मूक-बधिरों की तरह खामोश रहते हैं और कोई सवाल भी नहीं उठाते।

लक्ष्य से परे

अब तक बाल गृहों में यौन शोषण और बलात्कार के कई मामले सामने आए हैं। भारत में किशोर आश्रय गृह जो सुरक्षा, पुनर्वास और किशोरों की मुख्यधारा में

बहाली को लागू करने के लिए बनाए गए हैं, वे इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में काफी पीछे तो हैं ही, आम जनमानस में उनकी छवि भी इससे उलट बनती जा रही है। यह आश्रय गृह सुरक्षा, पुनर्वास और मुख्यधारा में बहाली करने के बजाय बच्चों से दुर्व्यवहार करने वाले केन्द्रों के रूप में जाने जा रहे हैं।

एशियाई सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स (एसीएचआर) द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट में किशोर आश्रय गृहों में बच्चों पर व्यवस्थित और अक्सर यौन संबंधी उत्पीड़न के मामले रिपोर्ट हुए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि कुल 39 मामलों में से 11 मामले सरकारी किशोर न्याय गृहों के थे। इन में अवलोकन गृह, बच्चों के गृह, आश्रय गृह और अनाथाश्रम शामिल हैं। एक मामले में बाल कल्याण समिति (CWC) सदस्य पर परामर्श सत्र के दौरान यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया गया था।

खराब प्रबंधन

इन आश्रय गृहों के प्रबंधन पर एक बड़ा सवाल खड़ा हो रहा है क्योंकि यौन उत्पीड़न के कई उदाहरण सामने आ रहे हैं। जिन आश्रय गृहों से ऐसे मामले सामने नहीं आ रहे, वहां के हालात भी कुछ ज्यादा अच्छे नहीं हैं। कई अवलोकन गृहों और बाल गृहों में बच्चों को मूलभूत सुविधाएं तक उपलब्ध नहीं हैं।

खराब प्रबंधन के मामले में अवलोकन गृहों और विशेष आश्रय गृहों को ढहते बुनियादी ढांचे के आधार पर चिन्हित किया जाता है। कई अवलोकन व आश्रय गृहों में ये स्थान स्वच्छता के क्षीण मानकों को प्रदर्शित करते हैं। शौचालय, स्नानगृह और सफाई सुविधाओं जैसी बुनियादी सुविधाएं अवरोधित हैं। बच्चों को प्रदान किया जाने वाला भोजन और कपड़े निर्धारित मानक से कमतर हैं।

एशियाई सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स (एसीएचआर) द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि-

'इस बात पर पर्दा नहीं डाला जा सकता कि भारत के किशोर न्याय गृह नर्क सामान बन गए हैं, जहां कैदियों को अमानवीय स्थितियों में रहने के लिए मजबूर करने के अलावा यौन हमले और शोषण, यातना व बीमारियों के अधीन रखा जाता है।'

ज्यादातर अवलोकन और बाल गृहों में कोई निगरानी प्राधिकरण नहीं दिखता। यह ज्यादातर सार्वजनिक दृष्टि से दूर होते हैं इसलिए इनकी सच्चाई सामने लाना उतना ही कठिन होता जाता है।

जिम्मेदार कौन?

बढ़ते बाल अपराध का एक कारण सिर्फ खराब कानूनी व्यवस्था नहीं है। कई बच्चे ऐसे हैं जो इन अवलोकन गृहों में जाकर अपराधी बन जाते हैं। किशोर अपराधी खुद अपने के कारण सबसे ज्यादा पीड़ित होता है। वह न सिर्फ अपने परिवार से दूर होता है, शिक्षा के भी कई मौके गंवा देता है और समाज में फिर से शामिल होने से कतराता है।

हालांकि हिरासत केंद्रों में नियुक्ति इनके पुनर्वास के लिए एक उचित विकल्प हो सकती है, लेकिन किशोरों को गंभीर अपराधियों के संपर्क में लाया जाना भविष्य में उनके द्वारा फिर से अपराध करने पर विचार करने की आशंका को भी जन्म देता है।

प्रयास के संस्थापक श्री अमोद कंठ का कहना है -

'ज्यादातर मामलों में किशोरों ने वास्तविकता में ऐसा नहीं किया होता है जिसके लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया जाता है। कम से कम 30 प्रतिशत मामलों में वे निर्दोष होते हैं या उनके द्वारा किए गए अपराध गंभीर नहीं होते हैं। ये बच्चे ऐसी परस्थितियों में रहते हैं जो उन्हें कमजोर कर, अपराध करने पर मजबूर करती हैं। कुल अपराधों में किशोरों के खिलाफ आईपीसी (भारतीय दंड संहिता) अपराधों का हिस्सा लगभग एक प्रतिशत है, जो अमेरिका जैसे देशों की तुलना में बहुत कम है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाल अपराधी समाज के लिए गंभीर खतरा पैदा करते हैं, लेकिन तथ्य यह है कि हम एक गैर-जिम्मेदार और देखभाल न करने वाले समाज हैं। हमे हमारे बच्चों की परवाह नहीं है।'

अनुकूल परिस्थितयों की कमी

यह बड़े ही दुःख की बात है कि विधि निर्मित होते हुए भी, कानून सशक्त होते हुए भी, कई प्रबंध किए जाने के बावजूद भी हम आज वहां खड़े हैं, जहां से हमे हमारा भविष्य उज्जवल नजर नहीं आता। बच्चे ही तो हमारा भविष्य निर्धारित करते हैं और अगर हम उन्ही को अन्धकार की ओर धकेल दें तो हम यह कैसे समाज का निर्माण कर रहे हैं?

बच्चों के अनुकूल परिस्थितियों की कमी एक बहुत बड़ा कारण है कि आज भी आश्रय गृहों और अवलोकन गृहों की हालत खस्ता है, और इसी वजह से कई बच्चे अपने हक से वंचित रह जाते हैं। जब तक संबंधित अधिकारी एक स्वस्थ वातावरण नहीं बना पाते तब तक खराब प्रबंधन के कारण ऐसी परेशानियां सामने आती रहेंगी।

पुनर्वास का मौका

अवलोकन गृहों का उद्देश्य सिर्फ 'बच्चा जेल' बन कर रह जाना नहीं है। जब तक यह बच्चों को पुनर्वास का मौका न दें, ऐसे अवलोकन गृहों का कोई फायदा नहीं है। जब बच्चे की बुनियादी जरूरतों को पूरा न किया जा रहा हो, तो सुधार कैसे हो सकता है? हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि जब बच्चा इन अवलोकन गृहों से निकलकर बाहर समाज में कदम रखेगा तो वह एकदम बदल चुका होगा? कि वह समाज में फिर-से एकीकृत हो पाएगा?

इन सवालों की गंभीरता को एक घटना के उदाहरण से समझा जा सकता है –

एक नाम के एक लड़के को 11 साल पहले अपनी छः वर्षीय दत्तक बहन के साथ छेड़छाड़ करने के लिए दोषी ठहराया गया था। एक किशोर न्याय गृह में कुछ महीने बिताने के बाद उसे मुक्त कर दिया गया। फिर उसी लड़के ने 27 वर्ष की उम्र में उसी लड़की से बलात्कार के लिए फिर से जेल में हैं।

इस घटना ने हमें कई मुद्दों पर विचार करने के लिए मजबूर किया है। जैसे कि उक्त लड़के को गिरफ्तार किया गया था और किशोर न्याय गृह में रखा गया था। फिर उसने उसी लड़की से बलात्कार किया और खुद को पहले से भी गंभीर अपराध में शामिल किया। तो क्या अवलोकन गृहों का वातावरण ऐसे बच्चों को बदलने और जीवन में अच्छी चीजों के बारे में सोचने हेतु प्रेरित के लिए पर्याप्त है? या यह किशोर न्याय गृह इस हद तक बुरे हैं कि एक बच्चे में सुधार होने के बजाय वह और गंभीर अपराध की ओर अग्रसर हुआ?

तो जब हालात ऐसे बन चुके हैं कि वे अपराध पर अंकुश लगाने के बजाय उन्हें बढ़ावा देने लगें, तो सुधार तो एक असुगम सपना है।

क्या हालात ठीक हो सकेंगे?

बॉम्बे हाईकोर्ट की बेंच ने हाल ही में एक जन हित याचिका (पीआईएल) पर स्वतः संज्ञान लिया जो कि बच्चों के आश्रय गृहों की अवस्था पर चिंता व्यक्त कर रही थी। बेंच ने राज्य सरकार से पूछा कि वह मुंबई में बच्चों के लिए आश्रय गृहों की स्थितियों में सुधार के लिए कदम कब उठाएगी? इसके अतिरिक्त राज्य को अदालत को यह भी बताना चाहिए कि क्या इस कार्य के लिए बजटीय प्रावधान करने का प्रस्ताव हुआ है और क्या ऐसे प्रावधान राज्य के विकास के लिए तैयार दस्तावेज में किए गए हैं।

2017 में चेन्नई के एक अवलोकन गृह से 33 बच्चे भाग गए थे। इस घटना ने प्रशासन पर कई बड़े सवाल खड़े किए। इसके बाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने सरकार को आदेश दिया।

ऐसे कदम आशा जगाते हैं कि न सिर्फ बाल गृहों के हालात सुधरेंगे, बल्कि सरकार और कानून का बाल अपराधियों के प्रति दृष्टिकोण भी बदलेगा।

कानूनी और सामाजिक स्तर पर जरूरत

चूंकि कई बाल गृह और आश्रय गृह बिना लाइसेंस के काम कर रहे हैं, इसलिए जरूरी है कि इनकी समय-समय पर जांच-पड़ताल की जाए। इससे हम सुनिश्चित कर सकेंगे कि अच्छी देखभाल हो और सभी बच्चों को मूलभूत आवश्यकताएं प्राप्त हों और तभी हम आगे उनके सुधार और पढ़ाई के बारे में सोच पाएंगे।

समय-समय पर ऐसे बच्चों की काउंसलिंग होनी चाहिए और ऐसे सभी परामर्शदाताओं के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि वे प्रशासन को नियमित तौर पर रिपोर्ट बनाकर दें।

अधिकतर अवलोकन गृहों में बच्चों की संख्या बहुत ज्यादा है। ऐसे में जरूरी है कि आधारभूत व्यवस्था सुधारी जाए और साथ ही साथ जन बल भी बढ़ाया जाए।

जागरूकता कार्यक्रम होते रहने चाहिए, जिसमें न केवल बच्चे, संबंधित अधिकारी भी भाग लें।

कदम, जो उठाए जाने चाहिए

- सभी संबंधित अधिकारियों के बीच बेहतर सामंजस्य होना अनिवार्य है,
- अवलोकन गृह में बच्चों की भीड़ कम करने के लिए और अवलोकन गृह खुलने चाहिए,
- क्षमता निर्माण की कमी तकरीबन हर स्तर पर दिखती है। जरूरी है कि इस पर नियमित रूप से काम किया जाए,
- कोई भी ऐसा गृह बिना लाइसेंस के न चल रहा हो,
- राज्य सरकारों को किशोर न्याय पर अपना बजट बढ़ाना चाहिए,
- अवलोकन और बाल गृहों में परामर्शदाता हर समय मौजूद होने चाहिए,
- सारे बच्चों को कानूनी सहायता प्राप्त होनी चाहिए,
- निरंतर जागरूकता कार्यक्रम होने चाहिए।

हालात तो ठीक हो ही सकते हैं, सरकार भी योजनाएं बनाती ही रहती है, लेकिन सबसे जरूरी यह है कि हम बच्चों के अनुकूल परिस्थितयों को पैदा करें ताकि वे अपराध करने की ओर बढ़ें ही नहीं।

किशोर न्याय एवं संरक्षण: क्रियान्वयन और खामियां

✍ *अंजलि त्रिपाठी, इन्टर्न*

चित्र क्रेडिट: www.childlineindia.org.in

भारत, दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है जहां न्यायपालिका की सम्प्रभुता एक महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। परन्तु आज जहां अपराध निरंतर बढ़ता जा रहा है एवं अपराधबोध घटता जा रहा है, देश की न्यायप्रणाली और कानून व्यवस्था धराशायी हो रही है। न्यायप्रणाली पर लोगों का विश्वास कम होता जा रहा है, न केवल वयस्कों के न्यायिक मामलों में बल्कि बाल एवं किशोर न्याय प्रणाली पर भी।

हमारी न्याय व्यवस्था वयस्कों पर केंद्रित है, परन्तु बाल एवं किशोर अवस्था के व्यक्ति जो अपराध करते हैं या उनके साथ हुए अपराध का वो दंश झेलते हैं उनकी सुनवाई तो है पर उतनी नहीं जितनी समय की मांग है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार हर साल भारत में तकरीबन 18694 किशोरों, जिनको किसी अपराध में गिरफ्तार किया जाता हैं, उनके मामलों का निपटारा होता है। किशोरों द्वारा किए जाने वाले आपराधिक कृत्यों एवं उनकी आपराधिक मानसिकता में तेजी से इजाफा हो रहा है फिर भी किशोरों के मद्देनजर बनाए गए कानून न तो इतने प्रभावशाली हैं कि बाल अपराधों या बच्चों के प्रति होने वाले अपराधों पर अंकुश लगाया जा सके और न ही उनका कार्यान्वयन इतना सक्षम रूप से होता है कि उनसे समाज को कोई अच्छे परिणाम मिलें।

भारत में किशोर अपराध एवं किशोरों के प्रति अपराध के मद्देनजर पहली बार सन् 1986 में एक जुवेनाइल जस्टिस एक्ट बनाया गया जो किशोरों और बच्चों की समस्याओं को रेखांकित करते हुए उनके उचित समाधान दे सके। इस कानून से पहले के संविधान और दंड संहिता में किशोरों और बच्चों के लिए जो कानून थे वो राज्यों के बनाए कानून थे। परन्तु 1986 के पश्चात देश भर के लिए एक समान कानून बनाया गया।

देश में एक समान कानून की आवश्यकता इसलिए थी क्योंकि विभिन्न प्रदेशों के अनेक कानून न सिर्फ उलझनें पैदा कर रहे थे बल्कि एकरूपता की कमी के कारण विभिन्न प्रदेशों के कारागृहों में अनेक प्रकार के विनियम, रखरखाव और हालात होते हैं और यह अनेकरूपता हानिकारक हो सकती है। इसी के मद्देनजर केंद्र सरकार 1986 में एक नया कानून लेकर आई जिसके

पीड़ित बच्चों से इतर वो बच्चे जो किसी अपराध में संलिप्त पाए गए उनके लिए भी मनोवैज्ञानिक परामर्श जरूरी है जिससे वो समाज में वापस आ सकें, अपने कृत्य के दुष्परिणाम पहचान सकें एवं ऐसे किसी कार्य में फिर से संलिप्त न होने को प्रतिबद्ध हो सकें।

अंतर्गत सारे राज्यों के कानून आ गए और वो प्रभावहीन हो गए।

इस नये कानून में भी कुछ कमियां थीं। उन कमियों को दूर करने के लिए एवं एक नया और अधिक प्रभावशाली कानून लाने की चर्चा शुरू हुई। नये कानून का केंद्र बिंदु कार्यप्रणाली को एक मजबूत ढांचा मुहैया करवाना था और एक ऐसा कानून भी जो सख्ती एवं कारगर रूप से लागू हो सके। इसी विचार के साथ साल 2000 में एक नवीन जुवेनाइल जस्टिस एक्ट लोकसभा में पारित हुआ और देश भर में लागू हुआ।

फिर 2006 में कानून के विशेषज्ञों को यह जरूरत महसूस हुई कि पुराना अधिनियम आज की स्थिति में उतना प्रासंगिक नहीं है जितना उसे होना चाहिए था और आज की जरूरतों के अनुरूप देश को अब एक नए अधिनियम की आवश्यकता है जो समाज की उम्मीदों एवं इच्छाओं पर खरा उतरे एवं आज के समाज में प्रासंगिक उपाय उपलब्ध करवाने में सक्षम हो। इसी के चलते 2006 में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख) और संरक्षण अधिनियम लागू हुआ। इस अधिनियम ने पूर्व के अधिनियमों की त्रुटियों को रेखांकित कर उनके उचित उपाय प्रदान किए।

त्रुटि-निवारण के अलावा इस अधिनियम का उद्देश्य न्याय प्रणाली को सुधारना एवं अपराध से ग्रसित एवं पीड़ित बालकों को संरक्षण और देखरेख मुहैया करवाना भी था। इस अधिनियम ने किशोरों के पुनर्वास और इलाज को भी महत्त्व दिया। परन्तु इस अधिनियम के ज्यादा फायदे इसके खराब क्रियान्वयन के कारण उजागर नहीं हो सके। एक बाल संरक्षण परियोजना 2009 की शुरुआत की गई जिसमें किशोरों एवं बाल अवस्था के भारत के नागरिकों को मिले अधिकारों एवं उनके हित के लिए बनाए गए कानूनों का उन्हें बोध एवं ज्ञान करवाया गया। इसके अलावा कई और माध्यमों से कार्यान्वयन प्रणाली को मजबूत करने के प्रयास किये गए।

तमाम सावधानियों के बावजूद इस अधिनियम में भी कई खामियां थीं। यह खामियां 2013 के बहुचर्चित निर्भया बलात्कार मामले के बाद सामने आईं। इस बलात्कार में एक आरोपी किशोर था जिसके कारण समाज में यह बहस छिड़ गई कि क्या अमानवीय कृत्यों एवं अपराधों के मामलों में किशोर की भौतिक आयु को नजरअंदाज करते हुए उसकी मानसिक आयु को लागू करने की आवश्यकता है।

इस चर्चा का कारण था कि भौतिक आयु के अनुसार किशोर का न्यायलय में परीक्षण एक वयस्क की तरह नहीं होगा और उसे 3 साल से ज्यादा कारागार की सजा नहीं सुनाई जा सकती। इसीलिए उसकी मानसिक आयु को मानवता के विरुद्ध किये गए अपराधों में मान्य रखना चाहिए जिससे वो एक वयस्क की तरह न्यायलय में परीक्षित हो एवं उसे उसके कृत्य की उचित सजा प्राप्त हो। यह उस समय समाज की एक बहुत गंभीर और विचारणीय मांग थी। इसी मांग के कारण केंद्र सरकार ने आनन-फानन में एक अध्यादेश जारी कर दिया एवं आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम 2013 पारित किया। उसी के पदचिन्हों पर 2015 में एक नये अधिनियम की मान्यता हुई जिसका नाम है किशोर न्याय (बालकों की देखरेख) और संरक्षण अधिनियम 2015। यह अधिनियम वर्तमान में लागू है और किशोर एवं बाल अपराध से संबंधित सभी मामले इसी अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और उनका निवारण इस अधिनियम में दिए गए उचित प्रावधानों के अनुसार किया जाता है।

कानूनी सहायता

भारत के कानूनों के प्रावधानों के अनुसार उचित व्यक्तियों - जो समाज के निचले पायदान पर हैं, शोषित और प्रताड़ित हैं एवं जिनके पास न्याय की लड़ाई लड़ने के साधन नहीं हैं - को सरकार मुफ्त कानूनी सहायता मुहैया करवाने के लिए बाध्य है। इस काम के लिए सरकार ने राज्य, जिला एवं तहसील स्तर पर प्राधिकारी नियुक्त किये हैं जो इस बात का खयाल रखते हैं कि उनकी क्षेत्र सीमा में आने वाले किसी भी योग्य व्यक्ति को कानूनी सहायता की जरूरत हो तो वो उसको प्राप्त करवाई जा सके।

जैसा कि कहा जाता है कि न्याय हर किसी को नहीं मिलता और न्याय महंगा होता है, इसी भ्रम को मिटाने के लिए यह कदम सरकार द्वारा उठाए गए हैं।

कानूनी सहायता से जुडी सेवाएं विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अंतर्गत आती हैं एवं यह अधिनियम कानूनी सहायता प्रदान करवाने हेतु दिशा-निर्देश निर्धारित करता है।

अधिनियम के अनुसार -

- अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्य

- मानव तस्करी के शिकार जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 23 में उल्लिखित है
- महिलाएं एवं बच्चे
- समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी अधिनियम, 1995 के सेक्शन 2 के खंड (प) में परिभाषित विकलांगता वाला व्यक्ति एवं
- कोई अन्य व्यक्ति जो किसी प्राकृतिक आपदा से पीड़ित या कोई भी और जो अपनी आर्थिक स्थिति के कारण अपना मुकदमा नहीं लड़ सकता

इन सबको कानूनी सहायता मुहैया करवाने के लिए सरकार प्रतिबद्ध है।

जब हम इसमें खास तौर पर बच्चों एवं किशोरों की चर्चा करें तो ये उजागर होता है कि किशोरों एवं बच्चों को सरकारी कानूनी सहायता कम ही प्रदान होती है। सरकार द्वारा उन्हें प्राप्त लाभों से वो अनभिज्ञ हैं। उन्हें इन योजनाओं से कोई खास लाभ नहीं मिलता। किशोरों एवं बच्चों को सरकारी योजनाओं की इस लाभ-हानि के अनेक कारण हैं –

जागरूकता की कमी –
किशोरों को कानूनी विषयों में इतनी जानकारी नहीं होती जितनी वयस्कों को होती है और न ही वे इतने परिपक्व होते हैं कि उसे समझ सकें। इसी कारण बच्चों एवं किशोरों तक उचित कानूनी मदद नहीं पहुंच पाती और वो यातनाओं से ग्रसित अपने मुकदमे को भी आर्थिक कमजोरियों की वजह से नहीं लड़ पाते।

कानूनी सहायता की गुणवत्ता –
कानूनी सहायता सरकार द्वारा प्राधिकरण में उपस्थित अधिवक्ताओं द्वारा मुहैया करवाई जाती है। कई बार पाया गया है कि न्यायप्रणाली कानूनी सहायता प्रदान करने वाले अधिवक्ताओं पर कोई निगरानी की व्यवस्था उपलब्ध नहीं करवाता। इसी कारण से हमेशा ऐसे अधिवक्ताओं द्वारा लडे गए मुकदमों में उनकी गुणवत्ता पर प्रश्न उठता रहा है। उनके ज्ञान, बाकी वकीलों के मुकाबले उनकी न्याय दिलाने की इच्छाशक्ति और दक्षताओं पर चर्चाएं गरम रही हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि एक प्रभावी निगरानी प्रणाली ईजाद की जाए और उसका पालन हो।

प्रताड़ित और पीड़ित किशोरों एवं बच्चों को मनोवैज्ञानिक परामर्श –
चूंकि कई बार बच्चे एवं किशोर ऐसे अपराधों का शिकार हुए होते हैं जो उनके मन पर एक दूरगामी चोट पहुंचाते हैं, ऐसे में मनोवैज्ञानिक से परामर्श उनके लिए अतिआवश्यक है। अगर उन्हें समय पर मनोवैज्ञानिक की मदद और मार्गदर्शन न मिले तो वो आघात के कारण अवसादग्रस्त हो सकते हैं। पीड़ित बच्चों से इतर वो बच्चे जो किसी अपराध में संलिप्त पाए गए उनके लिए भी मनोवैज्ञानिक परामर्श जरूरी है जिससे वो समाज में वापिस आ सकें, अपने कृत्य के दुष्परिणाम पहचान सकें एवं ऐसे किसी कार्य में फिर से संलिप्त न होने को प्रतिबद्ध हो सकें।

स्पष्ट है कि बच्चों को कानूनी सहायता उपलब्ध कराने में कई बाधाएं हैं। इन बाधाओं को पार करके ही किशोर अपराधी या पीड़ित बच्चे को कानूनी सहायता प्रदान की जा सकती है और उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाया जा सकता है।

खबर

श्रमिकों के बच्चों की निर्बाध पढ़ाई के लिए चलाया जाएगा 'जीरो ड्रॉप आऊट' अभियान

12 जून 2018, चंडीगढ़(धरणी)
हरियाणा के श्रम एवं रोजगार मंत्री नायब सिंह सैनी ने कहा कि प्रदेश में श्रमिकों के बच्चों की निर्बाध पढ़ाई के लिए 'जीरो ड्रॉप आऊट' नियम पर अभियान चलाया जाएगा ताकि ऐसे बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने में कोई व्यवधान उत्पन्न न हो। वे मंगलवार को चंडीगढ़ में हरियाणा राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा विश्व बाल श्रम निरोधी दिवस पर आयोजित 'बचपन बचाओ' कार्यक्रम में बतौर मुख्य अतिथि बोल रहे थे। उन्होंने अधिकारियों को निर्देश देते हुए कहा कि प्रदेश के ईट-भट्ठों, दुकानों, घरों में काम करने वाले बाल मजदूरों के स्वामियों को पहले समझाया जाए अन्यथा उनके खिलाफ सख्त कानूनी कार्रवाई की जाए। बच्चों के संरक्षण के लिए प्रदेश में 69 बाल देखभाल गृह है, जहां लावारिस बच्चों का भी संरक्षण किया जाता है। इस कार्य की सफलता के लिए प्रदेश की सामाजिक संस्थाओं तथा एनजीओं को आगे आना चाहिए।

रोजगार मंत्री नायब सिंह सैनी ने कहा कि हरियाणा सरकार ने श्रमिक बच्चों की शिक्षा के लिए अनेक योजनाओं की शुरुआत की है। इसके तहत राज्य के मजदूरों को उनके बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाएगा, जिससे वे भविष्य में एक सफल नागरिक बन सके। सरकार द्वारा श्रमिक के बच्चों को पढ़ाई के दौरान आर्थिक सहायता दी जाती है, जिसमें कि कक्षा 1 से 8 के तक के विद्यार्थियों को 8 हजार रुपये, कक्षा 9 से 12 तक के विद्यार्थियों को 10 हजार रुपये, कक्षा 12 से स्नातक तक 15 हजार तथा कक्षा स्नातक से ऊपर के विद्यार्थियों को 20 हजार रुपये दिये जा रहे हैं।
(Source: https://haryana.punjabkesari.in/haryana/news/zero-out-campaign-to-be-run-for-laborers-child-uninterrupted-education-818198)

गरिमापूर्ण जीवन पर भारी मैला

✍ *जसमीत कौर, इन्टर्न*

तस्वीर: रत्नीश साहिल

हाल ही में आए सरकारी आंकड़ों (इंटर-मिनिस्टीरियल टास्क फोर्स)[1] के अनुसार देश के 12 राज्यों में करीब 53 हजार से ज्यादा लोग आज भी मैला ढोने जैसी कुप्रथा की गिरफ्त में है।

लाखों लोगों के लिए भारत अवसरों से भरपूर एक राष्ट्र बन चुका है और विदेशी निवेशों के लिए एक लक्ष्य के रूप में उभर रहा है। लेकिन आजादी के 70 साल बाद भी कुछ ऐसी खेदजनक स्थितियां हैं जो भारत को जकड़े हुए हैं, जैसे जाति व्यवस्था। जाति आधारित भेदभाव ने आज भी भारत पर अपना शिकंजा कसा हुआ है। इस प्रकार के भेदभाव के चलते बहुत सारे भारतीय अपने-आप को उस आबादी से काफी दूर पाते हैं जो विकास की ओर बढ़ रही हैं। इसी जाति व्यवस्था के कारण आज भी कई लोग मैला ढोने जैसी घृणित और अपमानजनक कुप्रथा में फंसे हुए है। समाज उनके साथ 'गंदा और केवल मैला ढोने के गंदे काम के लिए बने' हुए व्यक्ति की तरह व्यवहार करता आ रहा है। 'मैला ढोने वाले' का ठप्पा लगने के चलते दूसरे लोग उन्हें इस काम के अलावा किसी अन्य काम के लिए नहीं बुलाते हैं। इस तरह से इन लोगों को सम्मानजनक काम के अवसर को पाने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

मैला ढोने के काम को एक अमानवीय प्रथा के तौर पर बहुत पहले ही चिन्हित कर दिया गया था। महात्मा गांधी ने 1917 में कहा था कि साबरमती आश्रम में रहने वाले लोग अपने शौचालय को खुद ही साफ करेंगे। महाराष्ट्र हरिजन सेवक संघ ने 1948 में मैला ढोने की प्रथा का विरोध किया था और इसे खत्म करने की मांग की थी। ब्रेव-कमेटी ने 1949 में सफाई कर्मचारियों के काम करने की स्थितियों में सुधार के लिए सुझाव दिए थे। मैला ढोने वालों के हालातों की जांच के लिए बनी समिति ने 1957 में सिर पर मैला ढोने की प्रथा को समाप्त करने का सुझाव दिया था। राष्ट्रीय मजदूर आयोग ने 1968 में 'सफाईकर्मियों और मैला ढोने वालों' के काम करने की स्थितियों के अध्ययन के लिए एक कमेटी का गठन किया था। इस समिति ने मैला ढोने की प्रथा को समाप्त करने और सफाईकर्मियों के पुनर्वास का सुझाव दिया था। इन समितियों के कुछ

1 http://thewirehindi.com/47114/centre-counts-53000-manual-scavengers-in-india-4-times-higher-than-last-survey

सुझावों को स्वीकार करने के साथ भारत सरकार ने मैला ढोने का काम और शुष्क शौचालय निर्माण रोकथाम कानून 1993 बनाया, जो (क) मैला ढोने वालों के काम और उचित तरीके से ड्रेनेज चैनल से जुड़ने पर शुष्क शौचालय के निर्माण पर प्रतिबंध लगाता है, (ख) इस कानून के उल्लंघन करने पर एक साल तक की सजा और दो हजार रुपए तक का जुर्माना या दोनों हो सकता है।

हालांकि भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) की 2003 की रिपोर्ट के मुताबिक केवल 16 राज्यों ने ही इस कानून को अपनाया। श्रम मंत्रालय के 'कर्मचारी क्षतिपूर्ति कानून' को केवल 6 राज्यों ने लागू किया। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में 2007 तक मैला ढोने की प्रथा को पूरी तरह से खत्म करने का लक्ष्य तय किया था। बावजूद इसके सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका के मुताबिक भारतीय रेल ने 2 लाख 40 हजार करोड़ की अपनी एकीकृत रेलवे आधुनिकीकरण योजना में मैला ढोने के खात्मे के प्रावधान को शामिल नहीं किया। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने भी इससे जुड़े 1993 के कानून को अपनाने और उसे लागू करने के लिए राज्यों को पत्र लिखा, लेकिन उसका भी नतीजा सिफर रहा।

सफाई कर्मचारी आंदोलन और 13 दूसरे संगठनों की ओर से 2003 में दायर एक याचिका पर सुप्रीम कोर्ट ने जनवरी 2005 में सुनवाई करते हुए इस बात को माना कि भारत में मैला ढोने वालों की संख्या बढ़ी है और केंद्र सरकार के सभी विभागों व मंत्रालयों और राज्य सरकारों को अपने संबंधित अधिकारियों के जरिए शपथ-पत्र दाखिल करने का निर्देश दिया, जिसमें उक्त अधिकारी याचिका में दायर तथ्यों की जांच कर उस पर छः महीने के भीतर रिपोर्ट देने के लिए व्यक्तिगत तौर पर जिम्मेदार था।

मैला ढ़ोने की प्रथा के जारी रहने से चिंतित संसद ने सितंबर 2013 में 'हाथ से मैला ढोने रूपी रोजगार पर रोक एवं मैला ढोने वालों का पुनर्वास अधिनियम, 2013' पारित किया। यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में 6 दिसंबर 2013 से लागू किया गया। सरकार इस कानून के तहत यह सुनिश्चित करना चाहती थी कि इस संबंध में व्यापक स्तर पर कार्रवाई की जाए ताकि जितनी जल्दी हो सके इस प्रथा को समाप्त किया जाए।

दिल्ली के पूर्व उपराज्यपाल नजीब जंग ने 2017 में कहा था कि सीवर और नालों की सफाई के लिए 100 प्रतिशत मशीनों का इस्तेमाल किया जाएगा क्योंकि हर साल लगभग 23,000 महिला-पुरुषों को विभिन्न प्रकार के स्वच्छता कार्य करते हुए अपनी जान गंवानी पड़ती है। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के एक शोध में पाया गया है कि सीवेज की सफाई के काम से संबंधित 80 प्रतिशत लोग स्वास्थ्य समस्याओं के कारण 60 वर्ष की आयु से पहले मर जाते हैं। मुंबई में दुर्घटनाओं, दम घुटने या जहरीली गैसों के संपर्क में आने से हर महीने औसतन 20 सीवर सफाईकर्मियों की मौत हो जाती है।

हालांकि रिपोर्टों के विपरीत, दिल्ली जल बोर्ड लगातार यही कहती रही है कि सीवेज सफाई का कार्य पूरी तरह से मशीनीकृत है और हाथ से मैला साफ करने का कार्य राजधानी में लगभग एक दशक से अभ्यास में नहीं है। उत्तरी दिल्ली में दिल्ली जल बोर्ड के कर्मचारी रविकांत कहते हैं कि हमें क्षेत्र में सीवर अवरोध की नियमित शिकायतें मिलती हैं लेकिन सभी कार्य पूरी तरह से मशीनीकृत होते हैं। हम मानवीय श्रम का उपयोग केवल उथले लाइनों को खोलने के लिए करते हैं जो दो फीट गहरे होते हैं। और इन सभी श्रमिकों को जूते, मास्क, जैकेट इत्यादि सभी सुरक्षा सामग्री, जिनकी आवश्यकता होती है वह हम उपलब्ध करवाते हैं।

रविकांत कहते हैं कि हम सफाई करने के लिए केवल मशीनों का उपयोग करते हैं। हम पुरुषों को सीवर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं देते हैं।

सफाई कर्मचारी आयोग के चेयरमैन श्री संत लाल चावरिया ने यह माना कि सीवेज सिस्टम को साफ करने के लिए मानवीय श्रम नियोजित करना सुप्रीम कोर्ट के फैसले का स्पष्ट उल्लंघन है और यह बेहद निराशाजनक है कि इस तरह के आधुनिक समय में सफाईकर्मियों की मौत के मामले हर रोज सुनने को मिलते हैं।

दुनिया भर के संस्थानों एवं देश की अदालतों द्वारा समय-समय पर मानवाधिकार और गरिमामय जीवन जीने के संवैधानिक अधिकार का दबाव बनता देख, सरकार ने मैला ढोने वाले लोगों को पहचानकर उनके पुनर्वास के लिए काम करने का प्रयास शुरू कर दिया। लेकिन स्थिति यह है कि कानून और अदालती निर्देशों के बावजूद मैला ढोने वालो की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और इस कुप्रथा को रोकने में सरकार एवं संस्थाएं असक्षम रही हैं।

अंतर-मंत्रालयी कार्यबल (इंटर-मिनिस्टीरियल टास्क फोर्स) द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार देश के 12 राज्यों में 53, 236 लोग मैला ढोने के काम में लगे हुए हैं। साल 2017 में दर्ज आंकड़ा 13,000 था, जो कि अब चार गुना बढ़ गया है।[2]

2 https://indianexpress.com/article/india/53000-manual-scavengers-in-12-states-four-fold-rise-from-last-official-count-5218032/lite/?__twitter_impression=true

	रजिस्टर किए गए मैला ढोने वाले	राज्य द्वारा दिया गया आंकड़ा
आंध्र प्रदेश	903	734
असम	876	542
गुजरात	146	146
हरयाणा	1,040	0
केरल	916	600
मध्य प्रदेश	8.016	0
महाराष्ट्र	3,608	429
पंजाब	144	0
राजस्थान	6,643	3,143
तमिलनाडु	885	0
उत्तर प्रदेश	28,786	1,056
उत्तराखंड	1,263	0

हालांकि यह पूरे देश में मैला ढोने का काम कर रहे लोगों का असली आंकड़ा नहीं है क्योंकि इसमें देश के 600 से अधिक जिलों में से केवल 121 जिलों का आंकड़ा ही शामिल है।

सबसे ज्यादा मैला ढोने वाले (28,796) उत्तर प्रदेश में पाए गए हैं। महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, जहां पहले मैला ढोने वालों का कोई आंकड़ा नहीं था, वहां भी इस रिपोर्ट के मुताबिक, मैला ढोने वाले मौजूद हैं।

द वायर द्वारा इस बारे में प्रकाशित एक रिपोर्ट में बताया गया था कि सरकार द्वारा पहले फेज में की जा रही गिनती में वो सफाईकर्मी शामिल थे जो रात के समय सूखे शौचालयों को साफ करते हैं। सरकार द्वारा दिए गए आंकड़े में सीवर और सेप्टिक टैंक साफ करने वाले सफाईकर्मियों का आंकड़ा नहीं है, जहां सबसे ज्यादा मौतें होती हैं। इस टास्क फोर्स को 30 अप्रैल तक यह सर्वे देना था लेकिन इसमें देर हुई।

हिंदुस्तान टाइम्स की रिपोर्ट के मुताबिक इसकी वजह राज्यों का असहयोग था क्योंकि वे यह बात नहीं स्वीकारना चाहते थे कि वे पूरी तरह से इस विषय पर काबू पाने में असफल रहे हैं।[3] 53,000 मैला ढोने की संख्या में से राज्यों ने केवल 6,650 को ही स्वीकारा है। यह रवैया साफ दर्शाता है कि मैला ढोने वालों और सफाई कर्मचारियों के विकास के लिए उठाये गए कदम कितने अपर्याप्त हैं।

इस प्रथा के बने रहने के पीछे इसको जड़ से खत्म करने के लिए बने मौजूदा कानूनों में कमियां भी प्रमुख कारण हैं। मैला ढोना दुनिया में कहीं भी अमानवीय और छुआछूत की सबसे ज्यादा अपमानजनक जीवित कुप्रथा है। लेकिन भारत में इसे मानवीय गरिमा के बजाय सफाई के मुद्दे से जोड़कर देखा जाता है। सफाई का मुद्दा होने के बावजूद भी इस पेशे के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले गंभीर प्रभावों को गंभीरता से लिया जाता है, ऐसा नहीं लगता। सुप्रीम कोर्ट में दायर श्री नारायणन की जनहित याचिका के मुताबिक इस पेशे से जुड़े लोगों के जीवन में मीथेन और हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी हानिकारक गैसों के संपर्क में आने से तत्काल मृत्यु और हृदय अधःपतन, मांसपेशियों और हड्डियों से जुड़े रोगों जैसे ऑस्टियोआर्थराइटिस, इंटरवेर्टब्रल डिस्क हर्नियेशन, हेपेटाइटिस, लेप्टोस्पाइरोसिस और हेलीकोबैक्टर, त्वचा की समस्याओं, श्वसन तंत्र की समस्याओं से जुड़े खतरे शामिल हैं।

2013 में मैला ढोने पर बने कानून को ओर मजबूत करने के लिए सरकार ने नई रणनीतियों को अपनाने का फैसला किया, जैसे कि पुनर्वास करना, आवास के लिए भूखंड देना और उनके बच्चों को छात्रवृत्ति प्रदान करना। लेकिन क्या वाकई ऐसा किया गया है या हो रहा है?

चूंकि भारत में इस कुप्रथा की जड़ें जातिवाद से जुड़ी हैं, इसलिए इस प्रथा से जुड़े लोगों का पुनर्वास कागजों पर तो आसान है लेकिन सामाजिक रूप से उन्हें समानता से स्तर पर लाना कर पुनर्वासित करना एक जटिल कार्य है। यह संभव हो इसके लिए कानून और उसके क्रियान्वयन को और सख्त किये जाने की जरूरत है साथ ही गरिमापूर्ण जीवन को सामाजिक व्यवस्था के केन्द्र में प्रतिस्थापित करने के अन्य प्रयासों की भी आवश्यकता है।

3 https://www.hindustantimes.com/india-news/survey-to-identify-manual-scavengers-in-18-states-misses-april-30-deadline/story-fqWtW2T9ppSzBJyxeNcMFO.html

पैरवी गतिविधियां

मशरूम खेती प्रशिक्षण कार्यशाला

25-31 मई 2018, बिहार। बांका जिले के चान्दन में सात दिवसीय मशरूम खेती प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में 30 महिलाओं ने भाग लिया जिसमें ज्यादातर अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाएं थीं। कार्यशाला में मशरूम की खेती कैसे की जाती है और उसमें किस तरह की सावधानियों की जरूरत है, इस पर विस्तार से प्रशिक्षण दिया गया। कार्यशाला के दौरान मशरूम उत्पादन के लिए आवरण तैयार करने, मशरूम को कीट प्रकोप से बचाने, रोग नियंत्रण, मशरूम का भंडारण और उपयोग करने के व्यावहारिक पक्ष पर प्रशिक्षण दिया गया। यह कार्यशाला विशेष रूप से उन बीड़ी श्रमिकों के लिए आयोजित की गई थी, जो बीड़ी बनाना छोड़कर आजीविका के वैकल्पिक साधन को अपनाना चाहते हैं।

पहाड़िया: अस्तित्व का संकट और संघर्ष

29 मई 2018, झारखंड। झारखंड की आदिम जनजाति 'पहाड़िया' के अस्तित्व के संकट और संघर्ष पर एक दिवसीय बैठक का आयोजन गोड्डा में किया गया। इस बैठक में सुंदर पहाड़ी, धमनी बाजार और बुआरीजोर क्षेत्रों के लगभग 30 सदस्यों ने भाग लिया। इस दौरान प्रतिभागियों ने अपनी चिंताओं को व्यक्त किया और सामान्य जीवन में सामने आ रही चुनौतियों को साझा किया। संथाल परगना क्षेत्र में राजमहल पहाड़ियों के ऊपर स्थित गांवों में, जहां यह जनजाति निवास करती है, बुनियादी सुविधाओं का सर्वथा अभाव हैं। प्रतिभागियों ने कहा कि शौचालय की सुविधा नहीं है, उन्हें पानी लाने के लिए पहाड़ी के नीचे छः किलोमीटर चलना पड़ता है और स्कूल अधिकतर बंद रहते हैं। संचार और सड़क के अभाव ने उनके जीवन को और अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया है।

महाकाली संवाद में भागीदारी

27 अप्रैल व 16 जून 2018, उत्तराखंड व नेपाल। भारत-नेपाल संयुक्त कार्य मंच (इंजाफ) के बैनर के तहत कई संगठनों के सहयोग से 27 अप्रैल 2018 को बनबसा, उत्तराखंड और 16 जून 2018 को नेपाल के महेंद्र नगर में महाकाली संवाद आयोजित किया गया। पैरवी इंजाफ का संस्थापक सदस्य और भारतीय संगठनों का नेतृत्व करता है। यह संगठन भारत और नेपाल के लोगों की साझा चिंताओं पर काम कर रहा है और भारत-नेपाल द्विपक्षीय संबंधों, मानव तस्करी और सुरक्षित प्रवासन, साझा नदियों और सहभागिता शासन सहित कई सीमा पार चिंताओं के समाधान के प्रयास पर बल देता है। महाकाली संवाद विशेष रूप से दोनों देशों के परिप्रेक्ष्य में पानी और संबंधित क्षेत्रों (जैसे कृषि, बांध, ऊर्जा इत्यादि) में भारत-नेपाल सहयोग को समझने और अनुभवों के अधार पर भविष्य की नीति को निर्धारित करने का प्रयास करता है। इस संवाद में पंचेश्वर बांध की चुनौतियां महत्वपूर्ण विचारों में से एक हैं। महाकाली संवाद, पानी को दोनों पक्षों के लिए मौलिक अधिकार के रूप में देख रहा है, और महाकाली नदी सहित नदी घाटी में रहने वाले लोगों की संस्कृति, जरूरतों, चुनौतियों को समझने पर जोर देता है।

निर्माण मजदूर पंजीयन शिविर का आयोजन

जून-जुलाई 2018, मध्य प्रदेश। मध्य प्रदेश में निर्माण श्रमिकों की संख्या लगभग 25 लाख अनुमानित है। जबलपुर शहर में एक लाख से अधिक भवन निर्माण श्रमिक हैं जिनमें केवल 15 हजार श्रमिको का ही पंजीयन हुआ है। और अधिक श्रमिकों का पंजीयन आसानी से हो सके और श्रमिकों को पंजीयन में मदद के उद्देश्य से पैरवी व नागरिक अधिकार मंच द्वारा जबलपुर के केसर बस्ती, चेरीताल, दुर्गानगर भूकंप कालोनी और कांचघर बस्ती में जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के दूसरे सप्ताह के मध्य पंजीयन शिविरों का आयोजन किया गया, जिनमें 641 निर्माण मजदूरों का भवन एवं अन्य संन्निर्माण कामगार अधिनियम के तहत पंजीयन के लिए फॉर्म भरा गया।

घृणा अपराध और सामाजिक सद्भाव पर कार्यशाला

25-26 जुलाई 2018, दिल्ली। घृणा अपराध और सामाजिक सद्भाव पर दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन दिल्ली में किया गया जिसमें देश के विभिन्न राज्यों से करीब 40 प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यशाला के दौरान सामाजिक सद्भाव को पुनर्स्थापित करने के लिए सामाजिक सहयोग और सामाजिक संगठनो के सकारात्मक हस्तक्षेप पर जोर दिया गया। इस दौरान घृणा अपराध से जुड़े सामाजिक, कानूनी, तकनीकी पक्षों सहित पुलिस, प्रशासन, मीडिया, इन्टरनेट, आदि पहलुओं पर चर्चा की गई।

खबर

देशभर की अदालतों में लंबित हैं एक लाख से अधिक बच्चों के खिलाफ अपराध के मामले

26 जून 2018 । हाल में केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने बच्चों के खिलाफ अपराध के संदर्भ में पुलिस के लिए कानूनी प्रक्रिया विषय पर एक पुस्तिका जारी करते हुए कहा कि बच्चों के खिलाफ होने वाले अपराधों को रोकने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि पुलिस एजेंसियों को संबंधित कानूनी प्रक्रियाओं बाबत सशक्त बनाया जाए और उनमें ऐसे अपराधों से निपटने के लिए पेशेवर हुनर भी पैदा किया जाए।

इसमें दोराय नहीं कि मुल्क में बच्चों के खिलाफ अपराध/यौन अपराध के मामलों में वृद्धि हुई है। वर्ष 2016 में आइपीसी व पॉक्सो के तहत बच्चों से जुड़े अपराध के 1,06,958 मामले दर्ज किए गए। इनमें से 33 प्रतिशत यौन हिंसा के शिकार हुए। हैरत वाली बात यह है कि 1,06,958 मामलों में से केवल 229 मामलों में ही निचली अदालतों ने फैसला सुनाया, जबकि पॉक्सो के मुताबिक ऐसे मामलों में निचली अदालत के संज्ञान में आरोप-पत्र आने के एक साल के भीतर फैसला आना चाहिए। हकीकत यह है कि देशभर में एक लाख से अधिक बच्चों के खिलाफ अपराध के मामले विभिन्न अदालतों में लंबित हैं।

(Source: https://www.jagran.com/news/national-maneka-gandhi-launch-a-book-on-prevention-of-crimes-against-children-jagran-special-18125088.html)

बाल अधिकार के संरक्षण के लिए शोषण पर अंकुश लगाना जरूरी

14 जून 2018, गुमला। गुमला जिला बाल संरक्षण समिति के तत्वाधान में बुधवार को विकास भवन में एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में बाल संरक्षण आयोग की अध्यक्षा आरती कुजूर ने कहा कि बाल अधिकार के संरक्षण के लिए आवश्यक है कि विविध प्रकार से हो रहे बाल शोषण पर पूरी तरह से अंकुश लगाना। इसके लिए अभिभावकों एवं आम लोगों में जागरूकता के साथ-साथ इसके लिए बने कानून का भी सख्ती से पालन आवश्यक है। उन्होंने कहा कि बाल संरक्षण एवं संवर्धन से जुड़े विभाग जैसे समाज कल्याण, शिक्षा विभाग, श्रम विभाग के पदाधिकारियों की अहम भूमिका है। एक तरफ सामाजिक जागरूकता के माध्यम से लोगों को जानकारी दी जाए कि वे अपने घरों के बच्चों को पढाई के बजाय किसी प्रकार की मजदूरी में नहीं लगाएं। साथ ही उनके साथ सख्ती का व्यवहार न करें ताकि उनके मानस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

(Source: https://www.bhaskar.com/jharkhand/ranchi/news/latest-gumla-news-024002-1951646.html)

Rajneesh Sahil

जब तक छोटे बच्चों को कष्ट सहने दिया जाएगा, तब तक इस दुनिया में सच्चा प्रेम नहीं हो सकता।

- इज़ाडोरा डंकन
1877-1927

(प्रख्यात अमरीकी नृत्यांगना जिन्होंने आलोचनाओं के बावजूद अपनी कल्पना और प्रयोगों से नृत्य की स्वयं की शैली विकसित की)

प्रति,

_____

_____

_____

_____

बुक पोस्ट

पैरवी, ई-46, अपर ग्राउण्ड फ्लोर, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-110024 द्वारा सीमित प्रसार के लिए प्रकाशित
फोनः 011-29841266, 46101652 | ईमेलः pairvidelhi1@gmail.com, info@pairvi.org | वैबसाइटः www.pairvi.org